‘रामचरितमानस’ में जनसाधारण का जीवन

विनय विश्वास

‘रामचरितमानस’ राम पर आधारित महाकाव्य है लेकिन जनसाधारण का जीवन उसमें अपनी जीवंतता के साथ मौजूद है। इस मौजूदगी पर ध्यान देना इस महाकाव्य और इसके महाकवि तुलसी, दोनों को ठीक-ठीक समझने के लिए ज़रूरी है। जनसाधारण का महत्व ‘रामचरितमानस’ में अनेक अवसरों पर चरितार्थ होता है। शिव की वर-रूप में उनकी बारात के बिना कल्पना ही नहीं हो सकती। राम द्वारा धनुष-भंग का और उनके विवाह का समाचार जब दशरथ को दूत देते हैं तो राजा उन्हें ‘निछावर’ देने लगते हैं। दूत इसे नीतिविरुद्ध कहकर अपने हाथों से कान मूँद लेते हैं। यहाँ दूतों का महत्व चरितार्थ होता है। उनकी नैतिकता सामने आती है। यह उस वर्ग की नैतिकता है जो नैतिक होने की क़ीमत चुकाते हैं।

जनसाधारण का महत्व ‘रामचरितमानस’ में अनेक स्थानों पर सामने आता है। राम-वियोग की आशंका से प्रजा ऐसे व्याकुल होती है जैसे पानी सूखने से पानी के जीवों का समुदाय। जैसे शहद छीन लिए जाने पर शहद की मक्खियाँ या जैसे पंखों के बिना पक्षी । राम का महत्व यहाँ प्रजा के कारण उजागर होता है। अपने साथ आए प्रजाजनों को तमसा नदी के किनारे सोते छोड़कर जब राम चले जाते हैं तो प्रजाजन उठकर मछलियों को अपने से श्रेष्ठ कहते हैं, जो पानी से बिछुड़कर प्राण छोड़ देती हैं। (प्रसंगवश, बाद में इस उपमान का प्रयोग रीतिमुक्त कवि घनानंद ने भी किया।) ये प्रजाजन राम का महत्व उजागर करने के लिए अनिवार्य हैं। राम के गुण जनसाधारण से जुड़कर पुष्ट होते हैं।

राम-लक्ष्मण-सीता के वनगमन का दृश्य मार्मिक है। इसकी मार्मिकता उन साधारणजनों के बिना उजागर नहीं हो सकती थी, जो मार्ग में उन्हें मिले; जिन्होंने उनके सौंदर्य को सराहा तथा उन्हें वन में भेजने के लिए विधाता की कठोरता को कोसा। वनगमन के समय रास्ते में आने वाले गाँवों के वासी न होते तो कौन उन्हें देखकर अपनी आँखों के होने का लाभ (लोचन लाहू) लेता! ग्रामीण स्त्रियाँ न होतीं तो कौन सीता से पूछता- “कोटि मनोज लजावनहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे।।”

‘रामचरितमानस’ में जनसाधारण की अर्थवत्ता वही है, जो हरियाली की दुनिया में घास की। राम-लक्ष्मण-सीता को छोड़कर लौटे खाली रथ और व्याकुल घोड़ों को देख अयोध्यावासियों के शरीर ऐसे गलने लगते हैं जैसे धूप में ओले। भरत जब राम को लिवाने वन की ओर जाते हैं तो ग्रामीण स्त्रियों की वाणी में मानो तुलसी स्वयं पूछते हैं कि पिता के दिए राज्य को छोड़ राम को मनाने पैदल जाने वाले भरत जैसा और कौन है! उनको देख रास्ते का गाँव-गाँव ऐसे विस्मय-विमुग्ध है मानो मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग आया हो। राम की तरह भरत का महत्व भी ग्रामवासियों के बिना चरितार्थ नहीं हो सकता था।

भूख क्या होती है, यह भूख को सहनेवाला ही जानता है। महत्वपूर्ण तथ्य है कि वन में आनेवाले राम-लक्ष्मण-सीता को भूख लगी होगी, इसपर और किसी का नहीं, भूख को अकसर सहने वाले कोल-किरातों का ध्यान जाता है और वे दोनों में कंद-मूल-फल ले-लेकर उनके पास पहुँचते हैं। कोल-किरातों और भीलों के मन में इतना प्रेम है कि भरत के साथ आए सभी अतिथियों का वे इस प्रकार स्वागत करते हैं-

“कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी।।

भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी।।

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा।।

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं।।”

वनवासी पवित्र, सुंदर और अमृत के समान स्वादिष्ट शहद को पत्तों के सुंदर दोने बना-बनाकर और उनमें भर-भरकर कंद, मूल, फल और अंकुर आदि की जूड़ियों (अँटियों) को विनयसहित सभी को प्रणाम कर-करके उनके स्वाद, प्रकार, नाम और गुण बता-बताकर देते हैं। लोग उनको दाम देने का बहुत प्रयत्न करते हैं परंतु वे लेते नहीं। दाम न लेने पर जब वे लौटाने लगते हैं तो वे राम की शपथ उनको दे देते हैं। कहते हैं कि हम निषादों को आप पुण्यवानों के दर्शन वैसे ही दुर्लभ हैं जैसे मरुभूमि को गंगा की धारा। राम-कृपा से ही हमने आपके दर्शन पाए हैं। ये दोने नहीं, हमारा प्रेम है, जिसे न मोल लिया जा सकता है, न लौटाया जा सकता है। प्रेम करने की इतनी और ऐसी क्षमता है ‘रामचरितमानस’ के जनसाधारण में।

निषाद और केवट जनसाधारण के ही प्रतिनिधि हैं। इस जनसाधारण में कहीं न कहीं स्वयं तुलसी भी शामिल हैं। ज्ञातव्य है कि मंगल अवसरों पर तुलसी जैसे स्त्री-समूहों के मंगलगान को हमेशा याद रखते हैं, उसी तरह निर्धनता दूर कराना भी नहीं भूलते। राम-विवाह के बाद लौटते हुए दशरथ याचकों को बुलवाकर उन्हें आभूषण, कपड़े, घोड़े, हाथी आदि देते हैं। इस तरह ‘प्रेम पोषि ठाढ़े सब कीन्हे’ , सबको प्रेम से पुष्ट कर अपने पॉवों पर खड़ा करते हैं। यह ‘अपने पाँवों पर खड़ा’ करना भीख देने-भर से कुछ अलग है।

बारात के अयोध्या लौटने पर भी दशरथ नगर के समस्त स्त्री-पुरुषों को कपड़े और आभूषण पहनाते हैं। इस कारण भी घर-घर बधावे बजते हैं। लंका-विजय के बाद विभीषण जब वस्त्राभूषण और रत्नों से भरकर पुष्पक राम की सेवा में लाते हैं तो राम के आदेश से उसे आकाश में ले जाकर बरसा देते हैं। जिसे जो भाता है, उसे वही मिलता है। राम को राजसिंहासन पर आसीन देखकर माताएँ तरह-तरह से इतना दान देती हैं कि भिक्षुक, भिक्षुक नहीं रहते- ‘जाचक सकल अजाचक कीन्हे’ । याचकों को अयाचक बना देने का यह प्रसंग भी बताता है कि ग़रीबी को तुलसी ने बहुत सहा था। उसकी पीड़ा वे अच्छी तरह जानते थे और इसीलिए उसे दूर कराने के किसी भी अवसर पर चूकते नहीं थे। सच तो यह है कि भूख और अभाव का जैसा अनुभव तुलसी को था, वैसा हिंदी के शायद ही किसी और प्रतिनिधि भक्त-कवि को रहा हो। उनका

सर्जक मानस इस अनुभव से बना था। उसके लिए स्वाभाविक था कि जनसाधारण के अभावों को अपने प्रतिनिधि महाकाव्य में रह-रहकर दूर कराता।

निर्धनता और भूख के दूर होने का उपमान-रूप में जो प्रयोग जगह-जगह तुलसी ने किया (मुदित छुदित जनु पाइ सुनाजू, रंकन्ह रायरासि जनु लूटीं, चले रंक जनु लूटन सोना, मनहुँ रंक निधि लूटन लागी, जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई आदि) वह प्रत्यक्षत: निर्धनता दूर होने के दृश्यों से अलग है। ये प्रयोग निर्धनता के अनुभव की आँच में तपे तुलसी के सर्जनात्मक मानस के सूचक भी हैं और जनसाधारण के यथार्थ से उनके गहरे सरोकार के भी।

ये प्रयोग इस सत्य के भी सूचक हैं कि 'रामचरितमानस' में मनुष्यों के और उनके सम्बन्धों के विविध रूप तो हैं ही, अपने रचना-समय की परिस्थितियों, संघर्षों और प्रवृत्तियों के विविध रूप भी हैं। ये रूप आज अप्रासंगिक नहीं हैं। काम-वासना जितने रूपों में आज प्रचलित है, उतनी शायद ही पहले कभी रही हो। सौंदर्य-प्रसाधनों का बढ़ता प्रयोग इसका परिणाम है। भले ही इस प्रयोग से सुंदरता, कुरूपता में बदल जाए लेकिन यह प्रयोग बढ़ता ही जाता है। विश्वमोहिनी को देखकर काम-पीड़ित हुए नारद भी कुरूप हो गए थे। औचित्य से रहित काम-वासना कुरूपता पैदा करती है।

वास्तविक शृंगार स्त्री-पुरुष समानता के बिना संभव नहीं होता। नारद ने यह विचार नहीं किया था कि विश्वमोहिनी उनको चाहती है या नहीं, वे उसके लिए उपयुक्त वर हैं या नहीं, वे तो बस उस सौंदर्य पर लुभा गए थे। इस हद तक लुभा गए थे कि उसके लिए उन्होंने विष्णु से रूप-सौंदर्य की भिक्षा तक माँगी। 'पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं' के रूप में उनकी बेचैनी प्रत्यक्ष हुई थी। इसी बेचैनी का बढ़ा हुआ विकराल रूप है, जिसके कारण आज बलात्कार होते हैं। स्त्री को वस्तुवत् बरता जाता है। यह वस्तुतः शृंगार का वीभत्स रूप है। 'रामचरितमानस' इन तमाम रूपों के विरोध में है। तुलसी के राम द्वारा एक पत्नी-व्रत को चुनना और उसका हर क़ीमत पर निर्वाह करना इसका एक प्रमुख प्रमाण है। भारतीय समाज की साधारण स्त्रियों का जीवन इससे कितना मानवीय बना; पतिव्रता-धर्म के समानांतर पत्नीव्रत-धर्म को अर्थात् स्त्री-पुरुष, दोनों के लिए समान मानदंड को इससे कितना बल मिला; इसे अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

इसे भी अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए कि 'रामचरितमानस' में जनसाधारण का जीवन अपने विविध पक्षों के साथ आता है। इनमें एक शिक्षक-विद्यार्थी पक्ष भी है। मनुष्य का शिक्षक-रूप विश्वामित्र में है। उनके और राम-लक्ष्मण के बीच गुरु-शिष्य सम्बन्ध है। हालाँकि इस सम्बन्ध पर राम के भगवद्-रूप और विश्वामित्र के ब्राह्मण-रूप की सशक्त छाया पड़ती है, जो इसका स्वाभाविक विकास नहीं होने देती लेकिन इसके बावजूद यह सम्बन्ध मरता नहीं। यही कारण है कि विश्वामित्र राम को ऐसी विद्या देते हैं जिससे उनको भूख-प्यास न लगे और शरीर में अतुलित बल और तेज का प्रकाश हो। दशरथ ने राम-लक्ष्मण को

सौंपते हुए विश्वामित्र से कहा था कि अब से आप ही इनके पिता हैं। भूख-प्यास और दुर्बलताजयी विद्या देकर वे इसी भूमिका का निर्वाह करते हैं। गंगा के धरती पर आने का वृतांत बताकर प्रकट करते हैं कि गुरु ज्ञान देने के लिए शिष्य के ज्ञान माँगने की प्रतीक्षा नहीं किया करता। राम उनकी आज्ञा लेकर ही जनकपुर देखने जाते हैं।

यह अपार गुरु-कृपा और पूर्ण शिष्य-समर्पण की झलक दिखानेवाला प्रसंग है। भले ही इसमें आए गुरु-शिष्य-संबंधों का रूप पुराना हो लेकिन इस रूप में आज भी इन संबंधों पर पुनर्विचार का आधार बनने की क्षमता है। वर्तमान धनतंत्र में गुरु-शिष्य के बीच जैसे तथाकथित पेशेवर संबंध पनप रहे हैं, जिनका नैतिकता से कोई लेना-देना लगभग नहीं है, उनपर गंभीरता से पुनर्विचार करने की ज़रूरत है। इसलिए भी कि वर्तमान शिक्षा जैसा मनुष्य बना रही है, उसकी मनुष्यता संदिग्ध है। 'रामचरितमानस' में यह पुनर्विचार करने के लिए अनेक स्थानों पर उत्प्रेरक तत्व विद्यमान हैं। इनमें से एक है- गुरु-शिष्य-संबंधों के बारे में कहीं गई अनेक बातें, जिनमें से अनेक कहावतें बन चुकी हैं।

प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध 'रामचरितमानस' में कबीर के काव्य से कम ऊर्जा के साथ नहीं हैं। गुरु की चरण-रज को तुलसी ने आँखों के दोष दूर करनेवाला अंजन कहा है। संजीवनी जड़ी का चूर्ण कहा है। उससे मन का दर्पण माँजा जाता है। अंतर्दृष्टि खुलती है। नया जीवन मिलता है। शिव-विवाह के संकल्प से उसे डिगाने आए ऋषियों से पार्वती कहती है कि नारद गुरु हैं और मेरा शरीर पहाड़ से पैदा हुआ है। इसलिए (पहाड़ जैसा) मेरा हठ नहीं छूटने वाला। गुरु की बात पर जो भरोसा नहीं करता, उसके लिए सपने में भी सुख और सिद्धि सुगम नहीं होते। गुरु हर हालत में रक्षा करता है। तुलसी के शब्दों में, "राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।।" भगवान के कोप से भी गुरु रक्षा कर सकते हैं और गुरु कुपित हो जाएँ तो संसार में और कोई बचानेवाला नहीं। दशरथ वशिष्ठ से कहते हैं- "जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं।"

गुरु की चरण-धूल दृष्टि-दोष ही दूर नहीं करती, सम्पूर्ण वैभव पर अधिकार भी देती है। सृष्टि में गुरु अद्वितीय सत्ता है। निर्विकल्प है। आधुनिक युग में ऐसे गुरु कम होते हैं, गुरुघंटाल ज़्यादा। तुलसी की नज़र से वे भी बच नहीं सके। रावण को जब समाचार मिला कि मूर्छित लक्ष्मण के लिए हनुमान औषधि लेने जा रहे हैं तो उसने कालनेमि को उनका रास्ता रोकने पर विवश किया। कालनेमि हनुमान के रास्ते में माया से मुनि (गुरु) का रूप बनाकर बैठ गया। हनुमान से कहा कि वे तालाब में स्नान कर आएँ तो वह उन्हें दीक्षा दे, ज्ञान दे। हनुमान का पाँव तालाब में एक मगरी ने पकड़ लिया। हनुमान ने उसे मार डाला। वह दिव्य रूप धारणकर कालनेमि का सच उन्हें बता गई। हनुमान ने उसके पास जाकर व्यंग्य किया- 'हे मुनि! पहले गुरुदक्षिणा तो ले लीजिए, बाद में गुरुमंत्र दीजिए!' और उसे पूँछ में लपेटकर पछाड़ डाला। गुरुघंटालों का हश्र ऐसा ही होता है। नारद अहंकार और वासना से ग्रस्त होकर ऋषित्व की गरिमा से जब गिरे तो बंदर जैसा चेहरा पाकर उपहासास्पद हुए।

'रामचरितमानस' में ऐसी अनेक बातें हैं, जो पुरानी मानकर छोड़ दी गई हैं। यह लगभग भुला दिया गया है कि हर पुराना व्यर्थ नहीं होता। ऐसी ही एक पुरानी बात है कि परिवार के सहज सुखी जीवन का रहस्य बड़ों के सम्मान में होता है। पुरानी मान्यता के अनुसार बड़ों का होना सुखद परिवार के लिए अपेक्षित ही नहीं, ज़रूरी भी है। सीता की खोज में दक्षिण की ओर भेजे गए दल में अंगद, हनुमान, जाम्बवान् आदि हैं। सीता का पता न लगने पर अंगद आँखों में आँसू भरकर कहते हैं कि असफल वापस लौटे तो सुग्रीव मार डालेंगे। सभी निराश होते हैं। ऐसे में जाम्बवान् विशेष उपदेश की कथाएँ कहते हैं। राम का गुणगान करते हैं, जिसे सुनकर सम्पाती पर्वत की कंदरा से बाहर आते हैं और सीता का पता बताते हैं। समुद्र पार करने की चुनौती सामने आती है तो वे हनुमान को उनका बल याद दिलाते हैं। जाम्बवान् और सम्पाती, दोनों वृद्ध हैं। बताते हैं कि वृद्ध होने का मतलब बेकार होना नहीं होता।

यह बात रावण के पक्ष को देखने पर भी सत्य सिद्ध होती है। युद्ध के दौरान जब वानर रावण की आधी सेना का संहार कर देते हैं तो रावण के नाना और वरिष्ठ मंत्री माल्यवान् उसे सीता को लौटाकर सुखी होने का उपाय बताते हैं। रावण उन्हें अभागा बूढ़ा कहते हुए उनका अपमान करता है। नतीजा यह होता है कि वह मारा जाता है। परिवार में बड़ों की अर्थवत्ता जो नहीं समझते, उनका यही हश्र होता है। माल्यवान् उन्हीं बड़ों के प्रतिनिधि या प्रतीक हैं, जिनकी आधुनिक परिवारों में बहुत कम जगह है।

जनसाधारण में साहस कम नहीं होता। विपरीत परिस्थिति में भी साहस के साथ कहे गए सच का प्रसंग रावण के बेटे प्रहस्त के रूप में सामने आता है। राम की सेना समुद्र पार कर चुकी है। विभीषण को रावण लात मार चुका है। राजसभा में वह मंत्रणा करता है। चापलूस मंत्री कहते हैं कि रावण को चिंता नहीं करनी चाहिए। वानर तो उनके आहार हैं। यह सुनकर प्रहस्त यह सच कहने का जोखिम उठाता है कि ये सब ठकुरसुहाती या मुँहदेखी कह रहे हैं। वह चापलूस दरबारियों से पूछता है- 'एक बंदर जिस समय समुद्र लाँघकर लंका में आया था और लंका को जला रहा था, तब तुमने उसे पकड़कर क्यों नहीं खा लिया? उस समय क्या तुम लोगों में से किसी को भूख न थी?' रावण को उसने साफ़ राय दी कि सीता लौटा दो, अगर राम उसे पाकर लौट जाए तो ठीक वरना डटकर युद्ध करो! रावण-सभा में विभीषण का हश्र देखने के बाद भी यह सब कहना सच कहने की क़ीमत चुकाने को तैयार रहना है। प्रहस्त तिरस्कार सहकर यह क़ीमत चुकाता है।

श्रमिक जनसाधारण का एक बड़ा हिस्सा होते हैं। वे केवल शारीरिक श्रम नहीं करते। उनके भीतर कलाकार भी धड़कता है। समुद्र पर सेतु बनाते हुए नल-नील इस सत्य के दृश्य-रूप हैं। वानर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों और पेड़ों को खेल-खेल में उठाकर लाते हैं और नल-नील को देते हैं। वे उन्हें गेंद की तरह लेते हैं- 'कंदुक इव नल नील ते लेहीं।' मानो मज़दूर, मिस्त्री को ईंटें उछाल-उछालकर दे रहे हों और मिस्त्री उनको अनायास लपक रहा हो! तुलसी ने नल-नील द्वारा सेतु बनाने को अच्छी तरह गढ़कर सेतु बनाना कहा है- 'रचहिं ते सेतु बनाइ।' नल-नील पुल बना नहीं रहे, वे पुल को एक कलाकार की तरह 'रच' रहे हैं। पुल वस्तुतः उनकी रचना है। वे उसके रचनाकार हैं। एक रचनाकार की कुशलता उस पुल के सौंदर्य में उजागर है। यह

बात और है कि उसके सौंदर्य के बारे में स्पष्टतः कुछ कहा नहीं गया लेकिन श्रोता/पाठक 'रचहिं' शब्द की अर्थ-गहनता में डूबकर इसे देख सकता है।

'रामचरितमानस' जनसाधारण के विविधानेक जीवंत रूपों से उसी तरह संपन्न है जिस तरह जीवन। अनेक

परिस्थितियों के संदर्भ में अनेक चेहरे इसमें दिखलाई देते हैं। निषाद और सुग्रीव के रूप में मित्रता का

चेहरा दिखता है। पारिवारिकता का चेहरा दिखता है। सहयोग, उदारता, परदु:खकातरता, स्नेह, सेवा, समर्पण, धूर्तता, वात्सल्य, संवेदनशीलता, भावुकता, वीरता, करुणा, प्रेम, शोक आदि के चेहरे दिखते हैं। कलिकाल के वर्णन में पाखण्ड, अविवेक, लोभ, वासना, क्रोध, अज्ञान, हिंसा आदि के चेहरे दिखते हैं।

इन सबसे मिलकर तुलसी के समय का एक विशाल चेहरा बनता है, जो जनसाधारण के बिना कभी न बनता।

विनय विश्वास

एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, कॉलेज ऑफ़ वोकेशनल स्टडीज़,

दिल्ली विश्वविद्यालय

ईमेलः vishwasvinay@gmail.com